INTERNATIONAL JOURNAL OF HISTORY

E-ISSN: 2706-9117
P-ISSN: 2706-9109
www.historyjournal.net
IJH 2023; 5(1): 196-198
Received: 23-04-2023
Accepted: 26-05-2023

सुशील कुमार
नेट (इतिहास), वास्तु बिहार, के० 23, रोड नं० 3, चक्का, पोस्ट – लालसाहपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
सुशील कुमार
नेट (इतिहास), वास्तु बिहार, के० 23, रोड नं० 3, चक्का, पोस्ट – लालसाहपुर, बिहार, भारत

मिथिला की सामाजिक एवं स्मृतियों के युग की धार्मिक पृष्ठभूमि

सुशील कुमार

प्रस्तावना

प्राचीन उत्तर–पूर्व भारतीय इतिहास में मिथिला का सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक इतिहास का विशेष महत्त्व है। यद्यपि पौराणिक काल से इस क्षेत्र के इतिहास की एक श्रृंखलाबद्ध जानकारी प्राप्त होती है। पर उत्तर वैदिक साहित्य ने इसकी प्राचीन, सामाजिक राजनीतिक व धार्मिक स्वरूप एवं भौगोलिक विस्तार पर विस्तृत वर्णन प्रस्तुत किया है। अलग–अलग कालखंड में इसे चाहे विदेह, तीरभूक्ति, तिरहुत या तपोभूमि नाम से भारतीय साहित्यकारों एवं मनीषियों तथा विदेशी यात्रियों ने पूरी श्रद्धा से अपने विचार व्यक्त किये हैं। इनकी लेखनियों और वृतान्तों के आधार पर हम मिथिला के इतिहास का अध्ययन मात्र राजनीतिक स्वरूप की पृष्ठभूमि में करके संतुष्ट नहीं हो सकते, जैसा कि बहुसंख्य रूप से हम प्राचीन भारत के अन्य राज्यों के इतिहास के साथ करते रहे हैं। सम्पूर्ण प्राचीन ऐतिहासिक काल में मिथिला के राजनीतिक एवं प्रशासनिक इतिहास से इसका सामाजिक–धार्मिक व सांस्कृतिक इतिहास आधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। सम्पूर्ण मिथिला का क्षेत्र जिसमें आधुनिक पश्चिमी चम्पारण, पूर्वी चम्पारण, वैशाली मुजफ्फरपुर, सीतामढ़ी, दरभंगा, मधुबनी, बेगुसराय, मुंगेर, खगड़िया, उत्तरी भागलपुर तथा पूर्णियाँ के वर्तमान इलाके सम्मिलित हैं। अपने परिपूर्ण सम्पत्ति, विशाल प्रासाद, नृत्य गृह सभाकक्ष, तपोवन, उद्यान सरोवर, लहराती फसलें तथा वन्य जीव से भरे वनों के लिए प्रसिद्ध रहा है। आर्यकालीन मिथिला संस्कृति की गरिमा का वृहत वर्णन वाल्मिकी रामायण में मिलता है, जहाँ महर्षि विश्वामित्र राम के साथ जनक विदेह के प्रासाद में आते हैं। मिथिलापुरी तक पहुँचने के क्रम में वे इस क्षेत्र के कई स्थलों का भ्रमण भी करते हैं, जिसके वैभव की चर्चा इस महाकाव्य में की गई हैं। इसी क्रम में राम के गौतम आश्रम तथा जनकपुर प्रवेश का भी प्रसंग आता है जिसमें पहला अहिल्या के उद्धार तथा दूसरा जनक की पुत्री सीता के द्वारा देवी गिरिजा मंदिर में पूजा अर्चना के लिए मंदिर के समीप ही स्थित विशाल उपवन से पुष्पों को तोड़ने से संबंधित है। रामायण काल के बाद महाकाव्य का दूसरा काल महाभारत का है, जिस युग में भी मिथिला के राज्य तथा इसके महत्त्व का यथोचित वर्णन किया गया है। मिथिला के प्राचीन इतिहास कुछ अपवादों और संक्षिप्त पृथक शासन कालों को छोड़कर मगध, मौर्य, शुंग, कण्व, कुषाण गुप्त, मौखरी और पाल राजाओं तथा उनके शासनों का इतिहास है। तदन्तर कर्णाट तथा सेन के अधीन मिथिला रही। उसके बाद ओइनवार, खंडवाल जो मध्यकालीन व आधुनिक काल के अन्तर्गत उक्त राजवंशों के शासन के अधीन रही।

गुप्तकाल में विभिन्न स्मृतियों की रचना हुई थी, जैसे नारद–स्मृति, कात्यायन –स्मृति, पाराशर स्मृति, वृहस्पति–स्मृति और याज्ञवल्क्य स्मृति। संस्कृत का प्रसिद्ध कोशकार अमर सिंह इसी युग में हुआ था उसने अमरकोश की रचना की। कथाओं के माध्यम से राजकुमारों को नीतिपरक उपदेश देने के लिए विष्णु शर्मा ने 'पंचतंत्र' की रचना की। 'हितापदेश' की रचना इसी समय हुई थी। उक्त स्मृतियों के माध्यम से तत्कालीन भारतीय व मिथिला की सामाजिक व धार्मिक व्यवस्था की जानकारी प्राप्त होती है। स्मृति–साहित्य से यह ज्ञात होता है कि गुप्त कालीन सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा विशेष थी। गुप्त नरेश ब्राह्मण धर्म के समर्थक तथा पोषक थे। इस कारण समाज में पुनः ब्राह्मणों की प्रतिष्ठा एवं श्रेष्ठता स्थापित हुई और चतुर्वर्ण व्यवस्था के पालन पर विशेष बल दिया गया। फलस्वरूप गुप्तयुगीन समाज ब्राह्मण–धर्मीय समाज बन गया। इस प्रकार गुप्त सम्राटों के संरक्षण में ब्राह्मण समाज ही विकसीत हुआ। गुप्त युग के पहले अनेक विदेशी जातियाँ भारत में आयी और वे यहीं बस गयीं। ये विदेशी जातियाँ भारतीय समाज में विलीन हो गयीं। उनका स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया। इसके अतिरिक्त उद्योग एवं व्यापार में प्रगति ने आर्थिक सम्पन्नता जीवन के उच्च स्तर और नगर–जीवन को जन्म दिया और समाज में एक धनाढ्य वर्ग उत्पन्न हुआ। आर्थिक समृद्धि ने भी गुप्तयुगीन समाज को प्रभावित किया।

डॉ० अखिलेश्वर कुमार एवं डॉ० राम नन्दन कुमार ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में स्पष्ट किया है कि गुप्तकाल व स्मृति युग में समाज की आधारशिला वर्ण व्यवस्था थी और जाति प्रथा प्रचलित थी।

किंतु इसमें कठोरता के स्थान पर उदारता से काम लिया गया। वर्णों और व्यवसायों का परिवर्तन संभव था। ब्राह्मण और शिल्पी जातियों के लोग सैनिक का कार्य करते थे। क्षत्रियों का भी ब्राह्मणों के समान दर्जा दिया गया और उन्हें सभी धार्मिक संस्कारों को करने का अधिकार मिला। मिथिला के समाज में ब्राह्मणों के अतिरिक्त सभी वर्ण के लोग सुविधानुसार कृषि, पशु–पालन, उद्योग धंधे तथा व्यापार कर सकते थे। वैश्यों को भी योग्यता के द्य अनुसार समाज और शासन में उच्च स्थान दिया गया। शूद्रों की स्थिति में परिवर्तन आया और उन्हें अनेक अधिकार प्राप्त हुए। उनका कार्यक्षेत्र अब केवल निकृष्ट कर्मों तक ही सीमित नहीं रहा, वे अब व्यापारी, व्यवसायी शिल्पी और किसान का भी काम करते थे। कुछ शूद्र सैनिक और सेना के पदाधिकारी भी थे। गुप्तकाल में धंधे–व्यवसाय पूर्णतया जाति द्वारा निर्दिष्ट नहीं होता था और लोग अपनी सुविधा और शक्ति के अनुसार अपने वर्ण के प्रतिकूल भी व्यवसाय चुन लेते थे। इस प्रकार व्यवसाय परिवर्तन करने की सुविधा तथा अनुमति होने से समाज में केन्द्रीय एकता एवं पर्याप्त गतिशीलता थी। जंगल में रहने वाले पिछड़ी जातियों को भी समाज में सम्मिलित कर लिया गया था। इससे शूद्रों और अछूतों की संख्या में वृद्धि हुई। म० म० डॉ० श्री उमेश मिश्र ने अपनी पुस्तक 'मैथिल संस्कृति और सभ्यता' में स्पष्ट किया है कि मिथिला में गुप्तकाल में ब्राह्मणों का महत्त्व काफी अधिक था। ब्राह्मणों को उचित आदर व सम्मान मिला करता था। अपने से बड़े (श्रेष्ठ) ब्राह्मणों के देखने के बाद खड़े हो जाया करते थे और प्रणाम करते थे। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया है कि मिथिला में वैश्यों की संख्या पर्याप्त थी। इन लोगों का मुख्य कार्य व्यवसाय (खरीद–व्यापार) हुआ करता था। साथ ही ये खेती भी उत्तम कोटि की किया करते थे। गुप्तयुग में अनेक जातियों और उपजातियों का उदय हुआ। इनका संबंध किसी वर्ण–विशेष से नहीं था। रथकार, वणिक, मागध, कर्मकार और गोपाल इसी श्रेणी की जातियाँ थीं। भूमि–हस्तांतरण की प्रथा के कारण समाज में कायस्थों की एक नयी जाति का जन्म हुआ। कायस्थों ने ब्राह्मणों के लेखन संबंधी एकाधिकार को समाप्त कर दिया। फलस्वरूप कायस्थों को ब्राह्मणों का कोपभाजन बनना पड़ा। और ब्राह्मण साहित्य में उनकी बड़ी भर्त्सना की गयी।

राधाकृष्ण चौधरी ने अपनी पुस्तक प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास में स्पष्ट किया है कि तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों का स्थान ऊँचा था। वे परंपरागत संस्कृति के रक्षक थे। गुप्त प्रथा वैष्णव धर्म की अनुयायी थी और इस युग में ब्राह्मणधर्म का पुनरूत्थान हुआ। गुप्त– राजाओं के अधीन देश की सामाजिक व्यवस्था भी ब्राह्मण धर्म के अनुरूप ही हुई। वैश्य परिवार भी इस युग में दान किया करते थे। गुप्तों की दिग्विजय के परिणामस्वरूप भारतीय सामाजिक जीवन में (मिथिला सहित) एक नवीन स्फूर्ति का जन्म हुआ। ब्राह्मणों का समाज में उनकी योग्यता एवं बुद्धि के कारण सम्मान था। वर्णों तथा व्यवसायों का परिवर्तन अब भी संभव था, इसलिए समाज में अब भी थोड़ा–बहुत लचीलापन बचा हुआ था। ब्राह्मण तप और स्वाध्या में लीन रहते थे। गुप्त काल में कायस्थ का एक स्वतंत्र जाति के रूप में परिगणित होना सामाजिक इतिहास के दृष्टिकोण से बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है और चतुर्मणि नामक प्रसिद्ध गंथ में भी जाति के रूप में कायस्थों का उल्लेख हुआ है। कुषाणकालीन मथुरा के एक लेख में तथा याज्ञवल्क्य स्मृति में कायस्थों का उल्लेख तो है, परंतु एक जाति के रूप में इसका विकास गुप्त युग में ही हुआ। कायस्थ ही राजस्व और भूमि संबंधी हिसाबों का लेखा–जोखा रखते थे। न्यायाधिकरण में न्याय लिखने का काम भी वही लोग करते थे – ये लोग लेखक, गणक करपिक, पुस्तपाल, अक्षपटलिक, दिबिर, लिपिकीकरण आदि नाम से जाने जाते थे। प्रथमतः ये लोग सभी वर्णों से इस पेशे में आते थे, परंतु शनैः शनैः उन्होंने मूल वर्णों से अपना संबंध तोड़ लिया और समाज में अब उनका एक जाति के रूप में आविर्भाव हुआ और उन्होंने अपने लिए एक देवता का भी आविष्कार कर लिया, जिसका नाम हुआ चित्रगुप्त। कायस्थ जाति में विभिन्न वर्णों के लोग थे, अतः उनकी अलग जाति बन जाने के बाद वर्णव्यवस्था के अन्तर्गत उना समायोजन मुश्किल हो गया। ब्राह्मणों के लिए यह कठिन था कि उन्हें किस वर्ण में रखा जाए। काल क्रमेण उन्हें द्विज और शूद्र दोनों श्रेणियों से अलग–अलग रखने की वकालत की गई। याज्ञवल्क्य और कल्हण के अनुसार प्रजा इस जाति से पीड़ित रहती थी। ये राजा के सहायक होते थे। वेदव्यास और औशनस स्मृति में कायस्थ को एक जाति के रूप में माना गया है। सामंतवादी विचारधारा के प्रसार के बाद विभिन्न स्थानों और क्षेत्रों में बँट जाने के कारण कायस्थों की भी उपजातियाँ बन गई और वे सामंतवादी पद्धतियों से विभूषित होने लगे। कायस्थों के उत्थान से ब्राह्मणों के अस्तित्व को धक्का लगा। विद्या पर उनका एकाधिपत्य समाप्त हो गया और कायस्थ अब ब्राह्मणों के कोपभाजन बन गए।

मिथिला में प्राचीन काल से वैदिक धर्मावलम्बी रहे हैं। धर्मईश्वर एवं मानव के बीच की कड़ी है। ईश्वर आराधना का उद्देश्य प्राचीन काल से ही इच्छित फल प्राप्त करना रहा है, यथा अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष, आदि। इसी इच्छित फल की प्राप्ति हेतु कर्मकांड के स्वरूप का उल्लेख धर्मशास्त्रों में किया गया हैं। सूर्य देवता की उपासना का उल्लेख मिथिला में प्राचीन काल से ही मिलता है। प्रत्यक्ष देवता के रूप में सूर्य की उपासना आर्यधर्म का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। संपूर्ण ब्राह्मण्ड के निर्माता प्रजातियों ने हिरण्यगर्भ से अंतरिक्ष और जल की स्थापना प्राणी मात्रों के लिए की है। उसने भी इसके साथ सूर्य शक्ति का स्तवन किया है। अतः सूर्य वैदिक देवता के मूल शक्तिधारी, सगुणधारी प्रत्यक्ष देवता माने जाते हैं। पृथ्वी से अंतरिक्ष, समुन्द्र से सोम तक प्राणियों के शक्तिदायक तत्त्व की आधारभूत शक्ति सूर्य है। विश्व के आदितम धर्मो में भी इसकी उपासना प्रखर रूप में देखी जाती है, जैसे ग्रीक देवताओं में ऐपेलो, इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया गया है। परंतु कालीदास की रचनाओं में घूंघट व घोघ का उल्लेख किया गया है। सती प्रथा का भी प्रचलन था। वस्त्राभूषण के मामले में मिथिलावासी बड़े शौकीन हुआ करते थे। रेशमी सूती और ऊनी कपड़ों का विशेष प्रचलन था। धोती, साड़ी, साया, दुपट्टा अंगया, जनेऊ, बाला इत्यादि का व्यवहार करते थे। स्त्रियाँ साड़ी के साथ दुपट्टा भी ओढ़ती थी। पुरूष मुरेठा व पगड़ी धारण करते थे। महिलाऐं ओठीं, कण्ठहार, कर्णफूल, बाला इत्यादि का व्यवहार करती थीं। सुगंधित तेल और अन्य सौंदर्य साधनों का प्रयोग किया जाता था। गुप्तकाल में मिथला के वैवाहिक नियमों में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ, परन्तु गांधर्व विवाह का प्रचलन हो गया था। अनुलोम–प्रतिलोम विवाह तो होता ही था, अन्तर्जातीय विवाह भी होता था परन्तु यह कोई सामाजिक नियम नहीं था।

धर्म में ही जन्म लेना या जन्म से ही मृत्युपर्यत धर्मपालन में मिथिलावासियों की परम्परा रही है। मिथिला वासी पूर्व से ही धार्मिक जीवन में अत्यन्त सहिष्णु थे। वे धर्म के नाम पर लड़ने वाले नहीं थे। यह सच है कि गुप्तकाल में वैदिक धर्म (ब्राह्मण धर्म) का पुनः वर्चस्व बढ़ा और बौद्ध धर्म का ह्रास होना शुरू हुआ। परन्तु मिथिला में धार्मिक दृष्टिकोण काफी उदार थी। हठधर्मिता, कट्टरता एवं संकीर्णता पृष्ठपोषक नहीं थे, विभिन्न देवता को एक ही ईश्वर का विभिन्न रूप मानते हुए हृदय में उनका एक विशिष्ट रूप के प्रति अनास्था अथवा पक्षपात नहीं था। यहाँ एक ही परिवार में वैष्णव, शैव तथा शाक्त सम्प्रदाय के लोग रहते थे अर्थात् मिथिला में वैदिक धर्म के अन्तर्गत ही विभिन्न धर्म थे।

जिनका अलग–अलग सिद्धांत एवं दार्शनिक महत्त्व था किंतु उद्देश्य सभी धर्मावलंबियों का एक ही था। इसके अतिरिक्त उस समय में मिथिला में बौद्धधर्म का भी प्रभाव था किंतु उनकी

अनास्तिकता को मैथिल शास्त्रकारों ने समाप्त कर बुद्ध को नवम अवतार मान कर अपने में आत्मसात कर लिया था। जैन धर्म प्रभाव मिथिला में नगण्य था। धर्म चूँकि ईश्वर एवं मानव के बीच की कड़ी है। ईश्वर आराधना का उद्देश्य प्राचीन काल से ही इच्छित फल प्राप्त करना रहा है, यथा–अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष आदि। इसी इच्छित फल की प्राति हेतु कर्मकांड के स्वरूप का उल्लेख धर्मशास्त्रों में किया गया है।

संदर्भ

1. मिथिला इतिहास विमर्श, अंक–1, मिथिला इतिहास संस्थान, दरभंगा, 2008, पृ०–18
2. राधा कृष्ण चौधरी, मिथिलाक सांस्कृतिक इतिहास, वैदेही समिति, दरभंगा, 1963, पृ०–17
3. अखिलेश्वर कुमार एवं राम नंदन कुमार, प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास (प्राचीन काल से 1526 ई० तक), स्टुडेंट्स फ्रेण्डस, पटना, 2005, पृ० –173
4. श्री उमेश मिश्र, मैथिल संस्कृति और सभ्यता, (मैथिली), दरभंगा, 1961, 90–09
5. अखिलेश्वर कुमार एवं राम नंदन कुमार, पूर्व उद्धृत, पृ०–173
6. राधा कृष्ण चौधरी, पूर्व उद्धृत, पृ०– 18
7. अखिलेश्वर कुमार एवं राम नंदन कुमार, पूर्व उद्धृत, पृ०–174
8. वी० डी० महाजन, प्राचीन भारत का इतिहास, एस० चंद० एण्ड कंपनी लि० नई दिल्ली 1997, पृ०–557
9. राधा कृष्ण चौधरी, प्राचीन भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, भारती भवन, पटना, 1990, पृ०–278
10. वही, पृ०–279
11. पी० वी० काने, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, खंण्ड–2, पृ०–75